जनवरी १९९७ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धम्म-वाणी

तपो च ब्रह्मचरियञ्च अरिय सच्चान दस्सनं।
निब्बान सच्छिकिरिया च एतं मङ्गलमुत्तमं॥

[सुत्तनिपात-मङ्गलसुत्त]

तप-साधन करना, ब्रह्मचर्य-पालन करना, चार आर्य-सत्यों का दर्शन करना और निर्वाण का साक्षात्कार करना –ये उत्तम मङ्गल हैं.

दुक्खञ्चेव पञ्ञापेमि दुक्खस्स निरोधं।

– [मज्झिम निकाय]

मैं केवल दुःख और दुःख-निरोध का ही प्रज्ञापन करता हूं.

उद्‌बोधन

मेरे प्यारे साधक साधिकाओ!

आओ, सत्य का सम्यक दर्शन करें।

दुःख आर्य-सत्य का सम्यक दर्शन करें।

दुःख समुदय आर्य-सत्य का सम्यक दर्शन करें।

दुःख निरोध आर्य-सत्य का सम्यक दर्शन करें।

दुःख निरोध गामिनी प्रतिप्रदा आर्य-सत्य का सम्यक दर्शन करें।

विपश्यना साधना द्वारा अंतर्मुखी होकर इन चारों आर्य-सत्यों का सम्यक दर्शन करें।जो कुछ बाहर है वह भीतर का ही प्रक्षेपण है। अतः भीतर की ओर झांकें ।इस साढ़े तीन हाथ की काया के भीतर सभी लोक समाए हुए हैं। लोकों की उत्पत्ति समायी हुई है। लोकों का निरोध समाया हुआ है। लोकों के निरोध का मार्ग समाया हुआ है। इनका साक्षात्कार करें।

चार आर्य-सत्यों का यह साक्षात्कार ही सम्यक दृष्टि है, विद्या है, बोधि है, ज्ञान है, आलोक है, विमुक्ति है। इन चार आर्य-सत्यों के साक्षात्कार से वंचित रह जाना ही मिथ्या-दृष्टि है, अविद्या है, अज्ञान है, अंधकार है, बंधन है।

इन चार आर्य-सत्यों का सम्यक दर्शन हमारे लाभ के लिए है, अर्थ के लिए है, हित के लिए है, सुख के लिए है, दुःखों के नितांत निरोध, उपशमन, निर्मूलन के लिए है, मुक्ति, मोक्ष, निर्वाण के लिए है।

अतः साधको!आओ, चारों आर्य-सत्यों का सम्यक दर्शन करें।

कल्याणमित्र,
सत्यनारायण गोयन्का

चार आर्य सत्य

यह दुख है। जीवन के इस प्रथम कटु सत्य को जब तक हम गहराई से जान समझ नहीं लेते, स्वयं अनुभव नहीं कर लेते तब तक उससे मुक्त होने के लिए प्रयत्नशील ही नहीं हो सकते।

यह दुख का कारण है। जीवन के इस द्वितीय गंभीर तथ्य को जब तक हम जान समझ नहीं लेते, स्वयं अनुभव नहीं कर लेते तब तक दुख की सच्चाई को जान कर भी उसके निवारण के लिए हम कुछ कर नहीं सकते।

यह दुख का निवारण है। जीवन के इस तृतीय आशाप्रद सत्य को जान समझ कर और स्वयं अनुभव करके ही हम सब प्रकार की निराशाओं से मुक्त होते हैं। जिस दुख का कोई कारण हो उस कारण के निवारण में ही दुख का निवारण समाया हुआ है। यह तीसरा सत्य दुख-संतप्त मानव के लिए असीम आशाओं का मंगल आश्वासन लिए हुए है। यह दुख निवारण का मार्ग है। जीवन के इस चतुर्थ कल्याणकारी सत्य को हम भलीभांति जान समझ लें और उसका पालन कर लें तो सचमुच अपने समस्त दुखों से मुक्ति पा जायँ। शील, समाधि और प्रज्ञा का यह मंगल-मार्ग ही एक ऐसी रामबाण औषधि है जो कि दुख के सभी कारणों पर गहरा प्रहार करती है। जहां दुख के कारण जड़ से उखड़ने लगे वहां दुख टिक ही कैसे सकेगा? कारणों की सारी जड़ें उखड़ जायेंगी तो समस्त दुखों से स्वतः विमुक्ति हो ही जायेगी।

इन चारों सत्यों को 'आर्य' कहा गया है। इसलिए आर्य कहा गया है कि इन सच्चाइयों से उत्तम अन्य कोई सच्चाइयां हैं ही नहीं और इसलिए भी कहा गया है कि इन चारों सत्यों को अनुभव के क्षेत्र में स्वयं जान लेने वाला व्यक्ति सहज ही आर्य बन जाता है याने पवित्र बन जाता है, संत बन जाता है, उत्तम बन जाता है, मुक्त बन जाता है।

यह दुख है, यह दुख का कारण है, यह दुख का निवारण है और यह दुख के निवारण की विधि है। इन चारों आर्य-सत्यों को जिस व्यक्ति ने सम्यक रूप से जान लिया उसने अपने हित, सुख, अर्थ और लाभ की सारी बात जान ली और जिसने इन्हें नहीं जाना उसने और बहुत कुछ जान लेने पर भी अपने सही हित, सुख की बात नहीं ही जानी। ये चारों सच्चाइयां जीवन जगत की सच्चाइयां हैं, ठोस धरती की सच्चाइयां हैं। सब कुछ यथार्थ ही यथार्थ है। इसमें कहीं कपोलकल्पना नहीं, कहीं कोरा बुद्धि-किलोल नहीं, कहीं भटका देने वाला अंध-विश्वास नहीं, कहीं उद्विग्न कर देने वाला मिथ्या भावावेश नहीं, कहीं भय-संकुल मिथ्या-मान्यता नहीं। जो कुछ है वह यथार्थ है। मनुष्य की अपनी ही अनुभूतियों के बल पर स्थापित है, स्वीकृत है। एक सामान्य व्यक्ति द्वारा स्वयं अपने ही श्रम से, अभ्यास से, सहज अनुभवगम्य है।

ये सच्चाइयां केवल श्रुतमयी प्रज्ञा पर ही आधारित नहीं, केवल चिंतनमयी प्रज्ञा पर ही आधारित नहीं बल्कि इन दोनों के साथ-साथ अभ्यासजन्य साधना के धरातल पर, स्वानुभूति की भूमि पर प्रतिष्ठित, भावनामयी प्रज्ञा पर आधारित है। सुने-सुनाए ज्ञान और चिंतन-मनन द्वारा उपलब्ध हुए ज्ञान की यहां अवहेलना नहीं की गई है परंतु इनसे भी अधिक महत्त्व स्वानुभूतियों के बल पर प्राप्त हुए ज्ञान को दिया गया है। श्रुतमयी प्रज्ञा के आधार पर हम जान लेते हैं कि यह यह जीवन के दुख हैं। चिंतन-मननमयी प्रज्ञा द्वारा हम इन दुखों की गंभीरता को स्वीकारते हुए यह महसूस करते हैं कि ये सत्य भलीभांति परिज्ञेय हैं, समझ लेने योग्य हैं। स्थूल-स्थूल दुखों की मोटी-मोटी जानकारी तक ही सीमित न रह कर गंभीर गहराइयों तक सूक्ष्म-सूक्ष्म दुखों का भी पूरा ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक है। ऐसा हम चिंतनमयी प्रज्ञा द्वारा समझते हैं और फिर भावनामयी प्रज्ञा द्वारा साधना के अभ्यास की भूमिका पर उतर कर

स्वयं अपनी अनभूतियों के बल पर इन दुखों की गहनता का अनुभव करते हैं, भलीभांति उन्हें परिज्ञात करते हैं।

श्रुतमयी प्रज्ञाद्वारा हम यह जान लेते हैं कि सभी दुखों के ये मूलभूत कारण हैं। फिर चिंतनमयी प्रज्ञा द्वारा यह भी महसूस करते हैं कि इन दुखों से हमें छुटकारा पाना चाहिए। दुखों के इन कारणों को उखाड़ फेंकना चाहिए, इनका प्रहाण कर लेना चाहिए। और फिर भावनामयी प्रज्ञा द्वारा साधना के अभ्यास की भूमिका पर उतर कर हम उन समस्त कारणों का प्रहाण कर लेते हैं, उन्हें खत्म कर लेते हैं।

श्रुतमयी प्रज्ञा द्वारा हम यह जान लेते हैं कि इन दुखों के निरोध की भी एक अवस्था है, इनके नितांत निवारण की भी एक स्थिति है। फिर चिंतन-मननमयी प्रज्ञा द्वारा हम यह महसूस करते हैं कि ऐसी दुख-निरोधक स्थिति का हमें स्वयं साक्षात्कार करना ही चाहिए, स्वयं अनुभव करना ही चाहिए। और फिर भावनामयी प्रज्ञा द्वारा साधना के अभ्यास की भूमिका पर उतर कर हम सचमुच उस दुख-निरोधक स्थिति का स्वयं साक्षात्कार कर लेते हैं, मुक्ति-रस का स्वयं आस्वादन कर लेते हैं।

श्रुतमयी प्रज्ञा द्वारा हम यह जान लेते हैं कि दुखों का निरोध करने के लिए यह मंगल मार्ग है। फिर चिंतन-मननमयी प्रज्ञा द्वारा हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हमारे सच्चे कल्याण के लिए इस मंगल पथ का हमें स्वयं अनुसरण करना ही चाहिए। इस विधि का स्वयं अभ्यास करना ही चाहिए। और फिर भावनामयी प्रज्ञा द्वारा साधना के धरातल पर उतर कर स्वयं अभ्यास करके हम इस विधि का लाभ उठाते हैं। हम दुख-विमुक्ति का स्वानुभव कर लेते हैं।

इस प्रकार इन चारों आर्य-सत्यों को पढ़ सुन कर श्रुतमयी प्रज्ञा द्वारा जान लेते हैं, अपनी बुद्धि की कसौटी पर कस कर चिंतन-मननमयी प्रज्ञा द्वारा इनके महत्त्व को भलीभांति समझ लेते हैं और शील, समाधि तथा ज्ञान मार्ग की साधना करते हुए भावनामयी प्रज्ञा द्वारा अभ्यास के बल पर स्वयं अपना मंगल साधते हैं। जब तक इन चारों सच्चाइयों को इस प्रकार तेहरा करके कुलबारह प्रकार से जान न लें, समझ न लें और अनुभव न कर लें तब तक हम अपने सही मंगल-कल्याण से दूर ही भटकते हैं। इसीलिए यह कहना अत्यंत सार्थक है कि जिसने इन चार आर्य-सत्यों को भली-भांति साक्षात्कार कर लिया वह कृत-कृत्य हो गया। उसे जो करना था सो कर लिया अब और कुछ करने को बाकी नहीं रह गया। जो पाना था सो पा लिया अब और कुछ पाने को बाकी नहीं रह गया। परंतु जो इन चार कल्याणकारी सच्चाइयों से वंचित रह गया, वह और बहुत कुछ जान समझ कर भी अनजान ही रह गया, और बहुत कुछ प्राप्त करके भी निर्धन ही रह गया।

किसी भी कुशल चिकित्सक के लिए यह आवश्यक है कि वह रोगी का सही रोग पहचाने, उस रोग का निदान करके उसके सही कारण को पहचाने और फिर उचित उपचार करके उस कारण का निर्मूलन कर, रोगी को रोगमुक्त कर दे। इन चार बातों को छोड़ कर अन्य किसी असंबंधित ऊलजलूल बात में उलझ जाने वाला चिकित्सक रोगी का हितैषी नहीं होता।

कोई व्यक्ति सम्यक संबोधि प्राप्त करता है याने पूर्णतया सही ज्ञान प्राप्त करता है तो इन चार कल्याणकारी सच्चाइयों की जानकारी ही तो प्राप्त करता है और एक कुशल भिषक की तरह, वैद्य की तरह न केवल अपना इलाज करके स्वयं रोगमुक्त होता है बल्कि अन्य अनेक रोगियों को भी उपचार का सही साधन बता कर उनके रोगमुक्त होने में सहायक बनता है। रोग और रोग के उपचार को छोड़ कर और कोई बिना सिर-पैर की बातें करना सचमुच बेमाने ही तो है। इसीलिए भगवान ने कहा कि मैं तो एक भिषक मात्र हूं, वैद्य मात्र हूं और वैद्य को रोगी के रोग का उपचार करने के अतिरिक्त अन्य निरर्थक बातों से क्या लेना देना! और तभी कहा कि मैं तो केवल मात्र दुख और दुख-निरोध ही सिखाता हूं और कुछ नहीं। कितना ठीक कहा उन्होंने कि जिस रोगी को विषैला तीर लगा हो और वह मरणांतक पीड़ा से व्याकुल हो तो उसके उपचार के लिए आये हुए वैद्य का यही धर्म है कि उस तीर को तुरंत बाहर निकाल कर रोगी को पीड़ा से मुक्त करे। परंतु यदि वह नासमझ रोगी इस बात का हठ करता रहे कि पहले यह मालूम करो कि जिसने तीर मारा वह लंबा है या ओछा है, काला है या गोरा है, मोटा है या पतला है तो यह निर्रथक जिज्ञासा उसके हित-सुख के लिए नहीं होगी। उसके हित-सुख की बात तो यही है कि उसकी असह्य पीड़ा का कारण-स्वरूप यह जो विषैला तीर है इसे निकाल कर रोगी को शीघ्र पीड़ा-मुक्त किया जाय। उस करणीय काम को नहीं करके अन्य थोथी बातों में उलझना निर्रथक ही तो है, फजूल ही तो है, अहितकर ही तो है, हानिकारक ही तो है।

सुदूर अतीत से लेकर आज तक न जाने कितने लोग ऐसी ही निर्रथक बातों में उलझते रहे हैं और अपनी तथा औरों की हानि करते रहे हैं। यह दुनिया कब बनी? कैसे बनी? इसे किसने बनाया? इसका अंत होगा या नहीं? होगा तो कब होगा? कैसे होगा? आज तक कितने तत्त्व-चिंतकों ने और दार्शनिकों ने इस संबंध में न जाने कितने कल्पना के घोड़े दौड़ाए हैं। भिन्न-भिन्न लोगों की भिन्न-भिन्न कल्पनाएं और बहुधा परस्पर विरोधी भी। एक को प्रिय लगने वाली कल्पना दूसरे को उतनी ही बेहूदी लगे। तिस पर मुसीबत यह कि हर एक का आग्रह कि मेरी ही कल्पना सही मानी जाय। यदि कोई न माने तो लड़ाई हो, झगडे हों, विग्रह-विद्वेष हो, युद्ध संघर्ष हो। निश्चय ही ऐसी भिन्न-भिन्न परस्पर विरोधी कल्पनाएं हमारे दुखों का निरोध नहीं कर सकती। जीवन जगत के यथार्थ दुखों के शमन के लिए हमें कल्पना-आकाश की उड़ान त्यागनी होगी, यथार्थ की ठोस भूमि पर कदम रख कर ही चलना होगा। जो सच्चाई है वह कितनी ही कटुक्यों न हो, अप्रिय क्यों न हो उसकी यथार्थता स्वीकार करनी ही होगी। जीवन-जगत को मिथ्या, माया, निस्सार कह कर उससे मुँह मोड़ लेना शुतुर्मुर्ग की तरह सच्चाई से दूर भागना है। समस्या से दूर भाग कर किसी ने आज तक उसका समाधान नहीं पाया। जीवन के दुखों को भुलाने की चेष्टा में आंख मूंद कर रखने वाले अपने आपको कुछ समय के लिए धोखे में भले भरमाये रखें परंतु दुख की नितांत विमुक्ति से वंचित ही रह जाते हैं। फोड़े की पीड़ा से घबरा कर कोई अफीम का नशा करले तो यह अल्प-कालीन आत्म-छलना ही होगी। उसका सही उपचार तो इसी बात में है कि उस अनपके हुए फोड़े को पकाए और पके हुए फोड़े

को चीर कर उसमें की सारी पीप और सारी गंदगी निकाल बाहर करे। यह काम कितना ही अप्रिय क्यों न हों परंतु उस रोग से मुक्ति पाने के लिए आवश्यक है, अनिवार्य है। किसी भी समझदार आदमी की समझदारी इसी बात में है कि वह समस्या से दूर नहीं भागे बल्कि एक ठोस यथार्थवादी की तरह सही वैज्ञानिक ढंग से उस समस्या का सामना करे, उसे समझे। उसकी यथार्थता से मुँह नहीं मोड़े बल्कि उसे स्वीकार करे और धैर्य पूर्वक उसके निराकरण के लिए यथोचित प्रयत्न करे। यही चतुरार्य सत्य हैं – समस्या, समस्या का मूलभूत कारण, समस्या का निवारण और समस्या के निवारण का तरीका।

अपने रोग को जानने के लिए और उस रोग के निवारण का तरीका जानने के लिए और उस तरीके को अपना कर रोग-मुक्त होने के लिए हमें किसी संप्रदाय विशेष में दीक्षित होने की कत्तई जरूरत नहीं है। न दुख संतप्त होना किसी संप्रदाय विशेष का एकाधिकार है और न ही दुख-विमुक्त होना। अज्ञानतावश दुख में उलझे रहना प्राणी मात्र का स्वभाव है। मनुष्य इसका अपवाद नहीं। परंतु मनुष्य की यही विशेषता है कि वह अपने बुद्धि-बल से, श्रम-बल से, साधन-बल से, अपने दुख को जान सकता है, दुख के कारण को पहचान सकता है और फिर दुख दूर कर सकने के तरीके को जान कर और उसे अपना कर दुख दूर कर सकता है। यह विशेषता मनुष्य की ही है, इतर प्राणियों की नहीं। परंतु यह विशेषता मनुष्य मात्र की है, किसी मनुष्य विशेष की नहीं। बस मनुष्य होना चाहिए, चाहे वह काला हो या गोरा हो, पीला हो या गेहुँआ हो, लंबी नाक वाला हो या चपटी नाक वाला हो, बड़ी तिरछी आंखों वाला हो या छोटी चुधियाती आंखों वाला हो, इस जाति का हो या उस जाति का हो, इस वर्ग का हो या उस वर्ग का हो, इस बोली भाषा का हो या उस बोली भाषा का हो, इस देश का हो या उस देश का हो, इस काल का हो या उस काल का हो। हां, यह अलग बात है कि अनेक मनुष्य अपने सही दुख को समझे बिना, दुख के सही कारण को समझे बिना, दुख-निवारण के सही तरीके को समझे बिना और उस तरीके को सही प्रकार से अपनाए बिना, भिन्न-भिन्न प्रकार की असंबंधित कल्पनाओं में, अटकलपच्चियों में, रूढ़ियों में उलझे रहते हैं और इस कारण दुख-मुक्त नहीं हो पाते।

तो आओ, सभी सांप्रदायिक घेरों की गिरफ्त से मुक्त रहते हुए जीवन जगत के सत्य धर्म, स्वभाव को जानें समझें। कल्पनाओं का सहारा छोड़ कर यथार्थ के धरातल पर चारों आर्य सत्यों को जानें समझें और साधना के क्षेत्र में उनका स्वयं साक्षात्कार कर जितना-जितना हो सके उतना-उतना दुःखविमुक्ति का लाभ हासिल करें।

स्थूल संवृत्ति सत्य को देखते-देखते ही हम सूक्ष्म पारमार्थिक सत्य को देखने लगेंगे। परमार्थसत्य को स्वयं देख कर, जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर, और उसमें विहार करके ही हम समस्त दुःखों की बेड़ियों को नष्ट कर सकेंगे, भव का क्रम तोड़ सकेंगे।

मंगल मित्र,
सत्यनारायण गोयन्का.